सा विद्या या विमुक्तये

● फटक चंद गिरधारी

शास्त्रों में कहा गया है, कटु सत्य नहीं कहना चाहिए। लू शुन ने भी कड़वा सच बोलने के दुष्परिणामों से आगाह किया है और बचने की तरकीब भी बताई है।

पर मेरे मित्र राधेमोहन जी इन सलाहों को नहीं मानते। आम तौर पर सत्य के प्रति वे उतने आग्रही नहीं, जितने कटु सत्य के प्रति। जब भी किसी स्थिति का वर्णन प्रिय-मधुर सत्य-सम्भाषण के रूप में चलता रहता है, राधेमोहन जी किसी दुर्निवार आंतरिक प्रेरणा के वशीभूत उसके दूसरे पहलू पर प्रकाश डालने लगते हैं।

भाई जी से उसकी लाग-डाँट चलती ही रहती है। इतवार की सुबह मेरा बैठका एक रणक्षेत्र में तबदील हो जाता है। राधेमोहन जी को उस दिन दफ़्तर नहीं जाना होता। सो वे सुबह सात बजे ही आकर डट जाते हैं और भाई जी की प्रतीक्षा करने लगते हैं।

पिछले इतवार को भाई जी आए तो विद्यार्थियों में बढ़ती उच्छृंखलता से काफ़ी क्षुब्ध-कुपित थे। राधेमोहन जी का कहना था कि यह युगों-युगों का किस्सा है। वृद्ध पीढ़ी को युवा पीढ़ी धृष्ट-उद्दण्ड प्रतीत होती है।

भाई जी बोले, ''नहीं बंधु ! अभी देखिए, लॉ कालेज में छात्रों ने अपने शिक्षक को ही पीट दिया...'' फिर भाई जी ने शिक्षकों की प्रताड़ना-अवमानना की घटनाओं की चर्चा की, इसका दोष पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को दिया और 'गुरुब्रह्मा-गुरुर्विष्णु...' से लेकर ''गुरु-गोविन्द दोऊ खड़े...' तक दर्जनों दोहे और श्लोक गुरु महिमा के पक्ष में सुना डाले।

पर राधेमोहन जी ने गुरु या शिक्षक की अवधारणा को ही प्रश्नचिह्नों के कटघरे में खड़ा कर दिया। उन्होंने कहा, ''जो शिक्षक नामधारी प्राणी सरकारी स्कूलों-कालेजों-विश्वविद्यालयों में या सेठों-साहूकारों-मिशनरियों के निजी स्कूलों में पढ़ाते हैं, वे तो महज वेतनभोगी कर्मचारी हैं। वे सामाजिक प्रगति के मिशन या किसी आदर्श से प्रेरित होकर नहीं पढ़ाते,बल्कि पापी पेट का गड्ढा भरने के लिए 'मास्टर साहब' बन गये हैं। वे क्या पढ़ाते-बताते हैं, इससे उनको कोई मतलब नहीं। वे पाठ्यक्रम से बँधे होते हैं और उसके औचित्य-अनौचित्य पर प्रश्न उठाने के लिए भी स्वतंत्र नहीं होते। इसमें दोष उनका नहीं है, बल्कि सामाजिक व्यवस्था का है। पर यदि कोई शिक्षक 'गुरु-धर्म' की मर्यादा निभाना ही चाहे तो निभा सकता है। वेतनभोगी के रूप में क्लास की पढ़ाई की ड्यूटी बजाने और परीक्षाभिमुख अध्यापन का काम सम्पन्न करने के बाद वह छात्रों को जीवन और समाज के बारे में सही शिक्षा दे सकता है। उन्हें न्याय, समानता जैसे आदर्शों के लिए जीने और मरने की शिक्षा दे सकता है। पर ज्यादातर शिक्षक तो अभी भी औपनिवेशिक ''मास्टर साहब'' (यानी मालिक साहब) की मानसिकता से ग्रस्त हैं। छात्रों से वे असम्पृक्त रहते हैं या उन्हें अपनी प्रजा समझते हैं। स्वयं अपने कैरियर में तरक्की के लिए जी-हुजूरी और तिकड़में करते हैं। जात-पाँत की राजनीति और मैनेजमेण्ट या प्रशासन की गणेश-परिक्रमा करते हैं। छात्र उनका सम्मान क्यों करें? राष्ट्रीय आंदोलन में शिक्षकों की अच्छी-खासी संख्या ने शानदार भूमिका निभाई थी। छात्रों ने दिल से उनका सम्मान किया । जो शिक्षक अंग्रेजी-सत्ता के जी-हुजूरिये थे, छात्र उनसे नफरत करते थे। बताइए, आज शिक्षक छात्रों को अन्याय, भ्रष्टाचार से लड़ने की शिक्षा क्यों नहीं देते? शिक्षा बिक रही है, जिसकी औकत हो, खरीदे। शिक्षक इस शिक्षा-नीति के विरोध में संगठित होकर छात्रों को सही ढंग की राजनीति करने की सोदाहरण शिक्षा क्यों नहीं देते?

वे छात्रों को क्यों नहीं बताते कि देश में बीस करोड़ युवा बेरोजगार क्यों है ? जो शिक्षक यह करेगा, वही सच्चा शिक्षक होगा और यकीन मानिए भाईजी, बहुसंख्यक आम छात्र उसकी बहुत कद्र करेंगे।''

भाई ने कमजोर-सा प्रतिवाद किया,''फिर भी मर्यादा एक चीज होती है, विनम्रता एक चीज होती है....''

राधेमोहन जी बीच में ही काटकर बोल पड़े, ''मर्यादा की सीमा सुपरिभाषित होनी चाहिए। मर्यादा की दुहाई देकर असंतोष के उफान को नहीं रोका जा सकता। विनम्रता ठीक है, पर इसके नाम पर पूरी कौम के युवाओं को बछिया के ताऊ बनने की नसीहत नहीं दी जा सकती। जो सामाजिक अराजकता और घुटन युवाओं को उद्वेलित कर रही है, उसे समझना होगा, हमदर्दी के साथ। अच्छा आप कहते हैं कि विद्या देने वाले की इज्ज़त करना विद्यार्थी का धर्म है। विद्या क्या है? शास्त्रों में ही कहा गया है, ''सा विद्या या विमुक्तये।'' यानी विद्या वह होती है जो मुक्त करती है। ऐसी विद्या जो भी दे, वही शिक्षक है और आदर-सम्मान का पात्र है। पर जो विद्या हमारे समाज में दी जाती है वह महज चाकरी करने के लिए होती है। वह मुक्त नहीं करती, गुलाम बनाती है। ऐसी विद्या तो वास्तव में विद्या ही नहीं है। जो गुलामी की शिक्षा दे, वह भला आदर-सम्मान का अधिकारी कैसे हो सकता है? इसलिए भाईजी, शास्त्रोक्तियों

(पेज 18 पर जारी)

से मेडिकल रिकॉर्डों को ट्रांसक्राइब करना, आदि। इन नौकरियों में बेशक बेहद तेज बढ़ोत्तरी हुई है। सॉफ्टवेयर नब्बे के दशक में लगभग शून्य से शुरू हुआ था और ITES लगभग पांच साल पहले। 2003 तक वे क्रमश: 4 लाख 60 हजार और 1 लाख 60 हजार रोजगार दे रहे थे। जबकि हमें पता है कि संगठित चेत्र में इसी कालखण्ड में नौकरियाँ कम हो रहीं हैं, तो ऐसी वृद्धि नाटकीय प्रतीत होती है। निश्चित तौर पर, भाजपा सरकार ने इसी चीज को अपने "भारत उदय" का एक प्रमुख अंग बनाया था और जल्दी ही उसने "ITES क्षेत्र में रोजगार की संभावनाओं को दर्शाने के लिए और इसे पसंदीदा कैरियर के रूप में प्रोत्साहित करने का अभियान हाथ में लिया।"(Business Standard, 2/12/03)

लेकिन जहां एक ओर सॉफ्टवेयर और ITES मध्य वर्ग के बेरोजगारों के एक बड़े हिस्से को ले सकता है और उनकी हताशा को ठण्डा करने में एक अहम भूमिका निभा सकता है वहीं इसकी नौकरियाँ कुल रोजगार के हिस्से के तौर पर (2004 में 0.2 प्रतिशत) भी और आवश्यक कुल रोजगार के हिस्से की तुलना में भी मामूली हो अमेरिका से किजनी ITES नौकरियाँ 2015 तक खिसक सकती हैं इसका फॉरेस्टर रिसर्च द्वारा किया गया बेहद उदार अनुमान भी महज 33 लाख पर आकर रुक जाता है। यह अंदाजा कोई भी लगा सकता है कि इसमें से कितनी नौकरियाँ भारत आ सकती हैं जबकि हम जानते हैं कि चीन जैसे कई देश समान रूप की गतिविधियों के लिए अपने आपको तैयार कर रहे हैं। अगर यह भी मान लिया जाए कि भारत को इनमें से बीस लाख नौकरियाँ मिलती हैं तो भी हमें जरूरत है कि हम इस आंकड़े को भारतीय श्रम बाजार के आकार के बरक्स खड़ा करें। अगर भारतीय श्रम बाजार में नवागंतुको संख्या को नौ से दस लाख प्रति वर्ष माना जाए, तो खिसक कर आए ITES रोजगार भारतीय रोजगार बाजार के सिर्फ दो प्रतिशत हिस्से का प्रतिनिधित्व करेंगे।

भारत के अधिकांश उद्योग मुख्य रूप से घरेलू मांग पर निर्भर हैं और मुख्य रूप से घरेलू आगमों का ही इस्तेमाल करते हैं। लेकिन IT और ITES उद्योग घरेलू उद्योग से आगमों का एक बेहद छोटा हिस्सा इस्तेमाल करते हैं और अपनी सेवाओं से मुख्य रूप से विदेशी मांग को संतुष्ट करते हैं। रोजगार के लिए इसके दो मतलब हैं। पहला, पिछड़े जुड़ावों(backward linkages) के बाकी अर्थव्यवस्था से सम्बन्धों के अभाव का अर्थ यह है हक IT उद्योगों की वृद्धि अन्य उद्योगों में ज्यादा नौकरियों को नहीं जन्म देगा। दूसरा मजलब यह है कि, अगर किसी वजह से विदेशी मांग गिरती ह–मसलन, इन्हीं सेवाओं में दूसरे देशों से कड़ी चुनौती मिलती है या अमेरिका जैसे देश ऐसी सेवाओं की आउटसोर्सिंग पर रोक लगा दें–तो रोजगार अचानक बेहद नीचे जा सकता है। अभी तक हुई ITES नौकरियों के मामूली विस्थापन तक की अमेरिका में राजनीतिक रूप से काफी थू-थू हुई है, सॉफ्टवेयर पेशेवरों के लिए वीजा के कोटे को घटाकर आधा कर दिया गया है, भारतीय कम्पनियों को ठेके पर काम देने से अमेरिकी राज्य सरकारों को रोकने के लिए कानून पारित किए जा रहे हैं। इस तरह "इस क्षेत्र की रोजगार संभावनाओं को प्रदर्शित करने और इसे एक पसंदीदा कैरियर के तौर पर प्रोत्साहित करने के लिए" मुश्किल से कोई बुनियाद मौजूद है।

देश में रोजगार और बेरोजगारी की यह स्थिति है। यह सोच कि श्रम शक्ति की कीमत को पर्याप्त रूप से नीचे गिरा दिया जाए तो पूर्ण रोजगार प्राप्त किया जा सकता है, उन्नत पूँजीवादी देशों के लिए भी गलत है, क्योंकि पूँजीपति रोजगार देने के फैसले मजदूरी के स्तर के आधार पर नहीं बल्कि इस आधार पर लेते हैं कि लाभ सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त मांग मौजूद है या नहीं। लेकिन भारत में तो श्रम शक्ति की 'बाजार सफ़ाया' कीमत की सोच खास तौर पर मूर्खतापूर्ण है, जहाँ कार्य करने योग्य आयु के आधे लोगों के पास किसी भी प्रकार का रोजगार नहीं है, और रोजगारशुदा आबादी का भी एक अच्छा-खासा हिस्सा विभिन्न प्रकार के स्वरोजगारों के जरिए किसी तरह जीवन चला रहे हैं। श्रम बाजार का सफाया नहीं हो सकता, यानी सभी संभावित मजदूरों को रोजगार नहीं मिल सकता, चाहे श्रम शक्ति का मूल्य कितना भी कम हो, क्योंकि देश की राजनीतिक अर्थव्यवस्था कुल मांग और रोजगार का वह स्तर पैदा कर पाने में अक्षम है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि भारत साम्राज्यवाद की गिरफ्त में है(विकासरुद्ध और विदेशी पूँजी के शिकंजे में)। और इसलिए इसकी विशाल उत्पादक संभावना, करोड़ों लोगों का श्रम एक फिजूल मामला बन जाता है।

'आस्पेक्ट्स आफ इण्डियाज़ इकॉनमी' से साभार

सा विद्या या विमुक्तये

(पेज 22 से जारी)

का सहारा लेकर युवाओं का मत कोसिए। आज शिक्षा सत्ता की अनुगामिनी है। शिक्षा-नीति सत्ताधारी बनाते हैं। शिक्षक आँख मूँदकर उसका अमल करते हैं तो छात्र उन्हें बड़े बाबू, खजांची या टिकट-क्लर्क ही समझते हैं। इससे अधिक कुछ भी नहीं। हाँ, जो भी सत्ता-प्रतिष्ठानों के सीमान्तों से बाहर आकर शिक्षक धर्म अनुपालन करेगा, छात्र उसे निश्चय ही सम्मान देंगे।"

भाईजी सहमत नहीं थे, पर चुप थे।

नेटवर्क मार्केटिंग की असलियत

(पेज 40 से जारी)

भलाई है, न कि शोषक परजीवी पूँजीपति वर्ग के पीछे चलते हुए उसके इशारों पर नाचने व उसके बिछाये जाल में फँसने में। यह तय है कि अंतत: उसे अपने वर्ग से टूटकर मजदूर वर्ग में शामिल होना ही है। अतएव इस मकड़जाल से बचें। जो फँस चुके हैं, वे इस चक्रव्यूह से निकलने की कोशिश करें; अन्यथा इसका बड़ा ही भयानक परिणाम भोगना पड़ेगा।

(संदर्भ–नेटवर्क मार्केटिंग से संबंधित प्रचार-सामग्री; जैसे–सी०डी०, कैसेट्स, पुस्तकें, सेमिनारों के भाषण आदि से।)*

'जीवन-चर्चा' से साभार